सत्यमेव जयते

भारत सरकार

भारत

का

विधि

आयोग

आत्महत्या के प्रयत्न का मानवीयकरण और गैर-अपराधीकरण

रिपोर्ट सं. 210

अक्तूबर, 2008

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 210)

आत्महत्या के प्रयत्न का मानवीयकरण और गैर-अपराधीकरण

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा 17 अक्तूबर, 2008 को डा. एच. आर. भारद्वाज, केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को अग्रेषित ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 पर स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : **lci-dla@nic.in** द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति ए.आर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का
उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई. एल. आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)1141/2008-एल सी(एल एस) 17 अक्तूबर, 2008.

प्रिय डा. भारद्वाज जी,

विषयः- आत्महत्या के प्रयत्न का मानवीयकरण और गैर-अपराधीकरण

मुझे उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 210वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

हमारे देश में, आत्महत्या का प्रयत्न भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अधीन एक दंडनीय अपराध है । धारा 309 इस प्रकार है :-

आत्महत्या करने का प्रयत्न : " जो कोई आत्महत्या करने का प्रयत्न करेगा, और उस अपराध के करने के लिए कोई कार्य करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.la@sb.nic.in.

से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा ।"

भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 यह व्यादेश देता है कि किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

पी. रथिनम बनाम भारत संघ (ए. आई. आर. 1994 एस सी 1844) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि जीने का अधिकार जिसके बारे में अनुच्छेद 21 कहता है, अपने भीतर बलात् जीवन न जीने के अधिकार को समाविष्ट करने वाला कहा जा सकता है, अतः धारा 309 अनुच्छेद का अतिक्रमण करता है । तथापि, बाद में ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य (ए.आई.आर. 1996 एस. सी. 946) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित करते हुए इस विनिश्चय को उलट दिया कि अनुच्छेद 21 का अर्थान्वयन "मरने के अधिकार" को इसमें गारंटीकृत मूल अधिकार के भाग के रूप में शामिल करने के लिए नहीं किया जा सकता, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 309 अनुच्छेद 21 का अतिक्रमणकारी है ।

विधि आयोग ने साधारण उपयोग और महत्व के केन्द्रीय अधिनियमों को पुनरीक्षित करने के अपने कार्य के भाग के रूप में भारतीय दंड संहिता के पुनरीक्षण का बीड़ा उठाया । 1971 में प्रस्तुत अपनी 42वीं रिपोर्ट में, आयोग ने अन्य बातों के साथ-साथ धारा 309 को निरसित करने की सिफारिश की थी । तद्नुसार राज्य सभा द्वारा यथा पारित भारतीय दण्ड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1978 में धारा 309 के लोप का उपबंध था ।

दुर्भाग्यवश, लोक सभा द्वारा इसके पारित होने के पहले, लोक सभा का विघटन हो गया और विधेयक व्यपगत हो गया । आयोग ने ज्ञान कौर के निर्णय के पश्चात् धारा 309 के प्रतिधारण की सिफारिश करते हुए 1997 में अपनी 156वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की ।

तथापि, यह महसूस किया गया कि आत्महत्या के प्रयास को दण्ड अधिरोपित अपराध के बजाय उपचार और देखभाल के उपयुक्त मस्तिष्क की रोगयुक्त दशा के प्रकटन से अधिक गंभीर माना जा सकता है । उच्चतम न्यायालय ने *ज्ञान कौर* वाले मामले में धारा 309 की संवैधानिकता पर ध्यान केन्द्रित किया । इसने कानून में इसके प्रतिधारण या बना रहने की प्रज्ञा पर विचार नहीं किया । विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा व्यक्त मतों, आत्महत्या निवारण के लिए इन्टरनेशनल एसोसिएशन, फ्रांस, यूरोप और उत्तरी अमेरिका के सभी देशों द्वारा प्रचलित आत्महत्या के गैर-अपराधीकरण, इंडियन मनोवैज्ञानिक सोसाइटी की राय और विभिन्न व्यक्तियों से आयोग द्वारा प्राप्त अभ्यावेदनों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने भारतीय दंड संहिता की धारा 309 में अंतर्विष्ट प्राचीन विधि को निरसित करने के लिए कदम उठाते हुए सरकार को सिफारिश करने का निश्चय किया जो विपद्ग्रस्त को उसके कष्ट से मुक्त करेगा । यहां यह उल्लेख करने की आवश्यकता है कि पाकिस्तान, बंगलादेश, मलेशिया, सिंगापुर और भारत जैसे विश्व के कुछ थोड़े से देश ही इस अवांछनीय विधि पर डटे हुए हैं ।

आपराधिक विधि को भ्रामक अत्युत्साह से कार्य नहीं करना चाहिए और इसे उपयुक्त होने और आशयित बुराई को दूर करने का प्रभावी तंत्र साबित हो सकने पर ही इसे साकार बनाया जाना चाहिए ।

सादर,

भवदीय,

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एच. आर. भारद्वाज,

केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,

भारत सरकार,

शास्त्री भवन

नई दिल्ली-110001

भारत का विधि आयोग

आत्महत्या के प्रयत्न का मानवीयकरण और गैर-अपराधीकरण

विषय सूची

1.	प्रस्तावना	11
2.	भा. दं. सं. की धारा 309 की संवैधानिकता और वांछनीयता	14
3.	भारत के विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें	24
4.	अन्य मत	36
5.	सिफारिश	45

1. प्रस्तावना

1.1.1 जहां संपूर्ण विश्व[1] में लगभग दस लाख लोग आत्महत्या द्वारा मरते हैं वहीं देश में वर्ष 2006 के दौरान एक लाख (1,18,112) से अधिक व्यक्तियों ने आत्महत्या करके अपने प्राण खो दिए हैं । यह पूर्व वर्ष आंकड़ों (1,12,1914) से 3.7 प्रतिशत से अधिक वृद्धि उपदर्शित करता है । दशाब्दी (1996-2006) के दौरान दरों में आत्महत्याओं की संख्या में 33.9 प्रतिशत (1996 में 88,241 से 2006 में 1,18,112 तक)[2] की वृद्धि अभिलिखित की है ।

1.1.2 वर्ष 2006 के लिए आत्महत्या शिकार व्यक्तियों का कुल पुरुष : स्त्री अनुपात 64 : 38 था ; तथापि, लड़का : लड़की (14 वर्ष की आयु तक) आत्महत्या शिकार का अनुपात 48 : 52 था अर्थात् लड़कों की तुलना में लगभग समान संख्या की लड़कियों ने भी आत्महत्या की । प्रौढ़ (15-29 वर्ष) और निम्न मध्य आयु के लोग (30-44 वर्ष) आत्महत्या का मार्ग अपनाने वाले समूहों में प्रमुख हैं । कुल आत्महत्या शिकार व्यक्तियों में 15-29 वर्ष के आयु समूह के लगभग 35.7 प्रतिशत नवयुवक और 30-44 वर्ष की आयु समूह के मध्य आयु वर्ग के व्यक्ति थे । वरिष्ठ नागरिकों की संख्या कुल शिकार व्यक्तियों का 7.7 प्रतिशत है । अधिकांश पुरुषों ने सामाजिक और आर्थिक कारणों से आत्महत्याएं की जबकि महिलाओं ने मुख्यतः भावनात्मक और व्यक्तिगत कारणों से अपने जीवन समाप्त किए ।[3]

---

[1] इन्टरनेशनल एसोसिएशन फार सुसाइड प्रवेन्शन

[2] भारत में दुर्घटना मृत्यु और आत्महत्याएं – 2006, राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

[3] – वही

1.2 आत्महत्या (फेलो डे से) का अभिप्राय जानबूझ कर अपने निजी शारीरिक अस्तित्व की समाप्ति या आत्महत्या है जहां स्वविवेक की आयु वाला और स्वस्थ चित्त कोई व्यक्ति स्वेच्छया स्वयं को मार डालता है । यह स्वेच्छया या साशय अपना निजी जीवन लेने का कार्य है । आत्महत्या को सुख-मृत्यु (इथानसिया) या दया-मृत्यु से विभेद करने की आवश्यकता है । आत्महत्या अपनी प्रकृति से ही किसी अन्य मानव की सहायता के बिना आत्महत्या या आत्म विनाश का कार्य या अपने निजी जीवन को समाप्त करने का कार्य है । दूसरी ओर, सुख मृत्यु (इथानसिया) में प्राण को समाप्त करने हेतु अन्य मानव अभिकरण का हस्तक्षेप अंतर्ग्रस्त है । सुख-मृत्यु कुछ नहीं बल्कि मानव वध है और जब तक विनिर्दिष्ट रूप आपवादित नहीं किया जाता, यह एक अपराध है । सुतराम्, दया मृत्यु का प्रयास आत्महत्या का प्रयास नहीं है ।

1.3.1 संपूर्ण इतिहास में, विभिन्न समाजों द्वारा आत्महत्या की निंदा और प्रशंसा दोनों की गई है । मध्यकालीन युग से, समाज ने आत्महत्या से निपटने के लिए पहले प्रामाणिक धर्मग्रन्थों और बाद में आपराधिक विधि का उपयोग किया । 1789 की फ्रांसे क्रान्ति का अनुसरण करते हुए यूरोपियन देशों में आत्महत्या के प्रयास के लिए आपराधिक शास्तियों को समाप्त किया गया और इंग्लैण्ड 1961 में ऐसा करने वाला अंतिम देश था ।[4]

1.3.2 इंग्लैंड में, आत्महत्या अधिनियम, 1961 ने यह अधिकथित करते हुए विधि निराकृत किया कि आत्महत्या करने का प्रयास एक अपराध है ।

---

[4] न्यू इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, जिल्द 11, माइक्रोपीडिया 15वां संस्करण (1987) पृ. 359

यद्यपि आत्महत्या स्वयं में अब अपराध नहीं रहा फिर भी ऐसा कोई व्यक्ति जो दूसरे को आत्महत्या करने या दूसरे द्वारा आत्महत्या करने के प्रयास की सहायता करता है, दुष्प्रेरण करता है, सलाह देता है या उपाप्त करता है, अपराध का दोषी है और ऐसी अवधि जो 14 वर्ष तक हो सकती है, के कारावास के अभ्यारोपण पर दोषसिद्धि पर दायी है ।[5]

1.4.1 भारत में, न केवल आत्महत्या का दुष्प्रेरण (भा. दं. सं. की धारा 306 द्वारा), बल्कि आत्महत्या करने का प्रयास भी (भा. दं. सं. की धारा 309 द्वारा) एक अपराध है । भा. दं. सं. की धारा 309 इस प्रकार है :-

> **आत्महत्या करने का प्रयत्न** – "जो कोई आत्महत्या करने का प्रयत्न करेगा, और उस अपराध के करने के लिए कोई कार्य करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा ।"

1.4.2 इस प्रकार, आत्महत्या करने के प्रयास को भा. दं. सं. की धारा 309 के अधीन दंडनीय अपराध गठित किया गया है । यद्यपि, पूरा हुआ कार्य अपराध नहीं था लेकिन आश्चर्य है कि कार्य करने के अपराध के प्रयास को अपराध बनाया गया ।

1.5 आत्महत्या बहुमूल्य मानव जीवन की अपरिपक्व या अप्राकृतिक समाप्ति का एक महत्वपूर्ण घटक है । यह एक विश्व समस्या है और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रयतित आत्महत्या के संबंध में यह मत व्यक्त किया कि मानसिक खराबी या सामाजिक कठिनाई के परिणामस्वरूप किसी बर्ताव को कारावास से दण्डित करना पूर्णतया जनता को गलत संदेश देता है, और

---

[5] हाल्सबरी लाज आफ इंग्लैण्ड, चौथा संस्करण, रिइसू जिल्द 11(1), पैरा 106

यह कि विश्व स्वास्थ्य संगठन आत्महत्या के निवारण के प्रयासों को प्रोत्साहित करता है ।

1.6 अन्तरराष्ट्रीय आत्महत्या निवारण एसोसिएशन ने भी यह मत व्यक्त किया है कि प्रयतित आत्महत्या का गैर-अपराधीकरण किया जाए और यह कि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता है और कारावास केवल उनकी समस्याओं को और बदतर करता है । उक्त एसोसिएशन प्रत्येक वर्ष 10 सितम्बर को आत्महत्या निवारण के अपने प्रभावी प्रयासों के रूप में "विश्व आत्महत्या निवारण दिवस" के रूप में मनाता है ।

1.7 उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से आत्महत्या निवारण इस महत्वूपर्ण मुद्दे का अध्ययन करने का विनिश्चय किया ।

2. भारतीय दंड संहिता की धारा 309 की संवैधानिकता और वांछनीयता

2.1 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के समक्ष कई बार भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 309 की संवैधानिकता चुनौती की विषय-वस्तु रही ।

2.2.1 संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता का उपबंध करता है, जो इस प्रकार है :–

"राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष

समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा ।"

2.2.2 संविधान का अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण का उपबंध करता है, जो इस प्रकार है :–

> "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।"

2.3 भा. दं. सं. की धारा 309 के अधीन राज्य बनाम संजय कुमार भाटिया[6] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की निम्नलिखित मताभिव्यक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख करना प्रासंगिक होगा :–

> " यह अभिकथित है कि एक नवयुवक ने अति भावुकता के कारण संभवतः आत्महत्या करने का प्रयास किया । यह विडम्बना है कि भा. दं. सं. की धारा 309 अब भी हमारी दंड संहिता में बनी हुई है । परिणाम यह है कि ऐसी कुंठा से ग्रस्त नवयुवक, जो अपना निजी जीवन समाप्त करने का प्रयत्न करता है, मानवीय दण्ड से बच जाता यदि वह सफल हो गया होता लेकिन वह पुलिस का शिकार हो जाएगा क्योंकि उसका प्रयत्न असफल हो गया है । अद्भुत विरोधाभास है कि सुख-मृत्यु समर्थकों के इस युग में, आत्महत्या आपराधिकतः दण्डनीय है । समाज को शर्म से अपना सिर झुकाने के बजाय, उसे ऐसे सामाजिक तनाव से गुजरना पड़ता है कि एक नवयुवक (कल की आशा), जो आत्महत्या करने के प्रयत्न में सफल नहीं होता है, के प्रति अपराधी जैसा बर्ताव किया जाता है । नवयुवक

---

[6] 1985 क्रि. ला. ज. 931

को मनोवैज्ञानिक औषाधलय भेजने के बजाय उसे उल्लासपूर्वक अपराधियों के साथ उसे मेल-मिलाप के लिए भेजते हैं, मानो यह सुनिश्चित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास हों कि भविष्य में वह दंड संहिता की दण्डात्मक धाराओं का शिकार हो । भा. दं. सं. की धारा 309 की निरन्तरता हमारे जैसे मानवीय समाज की प्राच्य अनुपयुक्तता है । ऐसे सामाजिक बेमेल के लिए निश्चित ही चिकित्सालय बेहतर उपचार है न कि पुलिस या कारागार । ऐसा विचार घृणित है । यह अवधारणा मात्र लक्षण के निष्ठुर दमन द्वारा आधुनिक शहरी और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के सामाजिक तनाव की चुनौती से निपटना चाहती है – इस प्रयत्न का परिणाम मात्र असफलता है । मानवीय सभ्य और समाजोन्मुख दृष्टिकोण और दण्ड शास्त्र की यह आवश्यकता है । कई दण्ड अपराध आचरण, समुदाय और सामाजिक बाह्याडम्बर के मिथ्या विचार द्वारा कुंठित हुए नवयुवकों के बीच प्रेम के अनुचित समाज और सामाजिक ह्रासोन्मुख दृष्टिकोण की प्रशाखाएं हैं । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब तक समाज इस वास्तविकता से जूझने से इनकार करता है इसका अवपीड़ित तंत्र भा. दं. सं. की धारा 309 जैसे उपबंध का अवलंब लेगा जिसका कानूनी पुस्तक में बने रहने का कोई औचित्याधिकार नहीं है ।"

2.4.1 मारुति श्रीपति दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य[7] वाले मामले में मुंबई उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भा. दं. सं. की धारा 309 संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का अतिक्रमणकारी होने के कारण इसके अधिकारातीत है और इसे अभिखंडित किया जाए । यह इंगित किया गया

---

[7] 1787 क्रि. ला. ज. 743.

कि मूल अधिकारों के अपने सकारात्मक और नकारात्मक पहलू हैं । उदाहरणार्थ, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अंतर्गत न बोलने और शान्त रहने की स्वतंत्रता है । इसी प्रकार संगम और संचरण की स्वतंत्रता के अंतर्गत किसी संगम में शामिल न होने या कहीं भी भ्रमण न करने की स्वतंत्रता है । कारबार और उपजीविका की स्वतंत्रता के अंतर्गत कारबार न करने और विद्यमान कारबार को न बंद करने की स्वतंत्रता है । यदि यह इस प्रकार है तो तार्किक रूप से इसका यह अर्थ निकलता है कि संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा मान्यताप्राप्त प्राण के अधिकार के अंतर्गत न जीने या बलात् जीवन न जीने का भी अधिकार होगा । सकारात्मक रूप से, अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मरने या अपना जीवन समाप्त करने का अधिकार होगा । न्यायालय ने आगे इंगित किया कि भा. दं. सं. की धारा 309 की भाषा प्रकृतितः महत्वपूर्ण है । यह आत्महत्या को परिभाषित नहीं करती । वस्तुतः, दार्शनिक, नीतिशास्त्री और समाज विज्ञानी इस बात पर सहमत नहीं हैं कि आत्महत्या कौन-कौन से घटकों से मिलकर बनता है । एक समुदाय में जिसे आत्महत्या माना जा सकता है, दूसरे समुदाय में यह ऐसा नहीं माना जा सकता और विभिन्न कार्य यद्यपि आत्मघाती हैं, फिर भी उसी समुदाय में विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न समयों पर इसे भिन्न रूप से वर्णित किया जा सकता है । जहां कुछ आत्महत्याओं की प्रशंसा की जाती है वहीं अन्य की निन्दा की जाती है । संभवतः इसी कारण विधानमंडल द्वारा इसे परिभाषित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया । स्वयं युक्तियुक्त परिभाषा की कमी धारा 309 के उपबंधों को मनमाना और अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी बनाता है । ऐसे विभिन्न मानसिक, शारीरिक और सामाजिक कारण हैं जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को विभिन्न उद्देश्यों और

प्रयोजनों के लिए आत्महत्या करने के प्रयत्न को प्रेरित करता है लेकिन उनके बीच एक जैसी कोई बात नहीं है । धारा 309 उनमें कोई अन्तर नहीं करती और एक जैसे मानती है जिससे उनके उपबंध मनमाने हो जाते हैं । आगे, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि प्रयतित आत्महत्या के दण्ड का प्रयोजन निवारण द्वारा भावी आत्महत्याओं को रोकना है तो ऐसा उन लोगों को दण्डित करके नहीं किया जा सकता जिन लोगों ने प्रयास किए, क्योंकि कोई निवारण उनको वापस नहीं ला रहा है जो सामाजिक या राजनैतिक कारणों से मरना या जीवन में रुचि की हानि या आत्म मुक्ति के कारण संसार को छोड़ना चाहता है । धारा 309 के उपबंध इस कारण से भी अयुक्तियुक्त और मनमाने हैं । जैसाकि ठीक ही कहा गया है, मनमानापन और समानता एक दूसरे के शत्रु हैं । यह इंगित किया गया कि शास्ति के कष्ट पर मरने के अधिकार पर पूर्ण प्रतिषेध युक्तियुक्त नहीं है ।

2.4.2 उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि मरने की इच्छा और इस प्रकार मरने के अधिकार के बारे में कुछ अप्राकृतिक नहीं है । अपना जीवन समाप्त करने के लिए अपनाए गए साधन भुखमरी से गले में फंदा लगाने तक भिन्न-भिन्न अप्राकृतिक हो सकते हैं । लेकिन वांछा जो साधनों का अवलंब लेने को प्रेरित करता है, अप्राकृतिक नहीं है । आत्महत्या या आत्महत्या करने का प्रयत्न सामान्य जीवन का लक्षण नहीं है । यह व्यक्तित्व की असामान्यता, या जनसाधारण स्थिति या असामान्य स्वभाव की घटना है । असामान्यता और असाधरणता मात्र इस कारण अप्राकृतिक नहीं है क्योंकि वे विलक्षण हैं ।

2.4.3 उच्च न्यायालय ने आगे मत व्यक्त किया कि मरने या अपना जीवन समाप्त करने का अधिकार सभ्यता की कोई नई बात या अज्ञात नहीं है । हिन्दू और जैन जैसे कुछ धर्मों ने कतिपय परिस्थितियों में अपने निजी कार्य द्वारा अपना जीवन समाप्त करने की प्रक्रिया का अनुमोदन किया जबकि अन्य परिस्थितियों में इसकी निन्दा की । बौद्ध धर्म का बर्ताव संदिग्ध है यद्यपि कतिपय परिस्थिति जैसे धर्म और देश की सेवा में आत्महत्या को प्रोत्साहित किया है । न ही पुराने और न ही नए विधान ने स्पष्टतः आत्महत्या की निन्दा की । तथापि, क्रिश्चियन ने हत्या के रूप में आत्महत्या की निन्दा की है । इसके विपरीत, कुरान ने इसे मानव वध से बदतर अपराध घोषित किया है ।

2.4.4 उच्च न्यायालय ने समाज और व्यक्ति के बीच संबंध में अस्त-व्यस्तता के आधार पर किए गए प्रख्यात फ्रेंच समाज विज्ञानी, इमाइल डर्कहाइम की आत्महत्या के त्रिचरणीय वर्गीकरण को उद्धृत किया : (i) अहम्वादी आत्महत्या तब होती है जब असामान्य व्यक्तिवाद उस पर समाज का नियंत्रण खो देता है ; व्यक्ति ऐसे मामलों में उस समुदाय की चिन्ता नहीं करता जिससे वह अपर्याप्ततः अंतर्ग्रस्त है ; (ii) स्वार्थहीन आत्महत्या जो समुदाय के प्रति अत्यधिक कर्तव्य भावना के कारण है ; और (iii) असंगत आत्महत्या जो व्यष्टियों के व्यवहार को नियंत्रित और विनियमित करने की समाज की असफलता के कारण है । यह वर्गीकरण कई लोगों द्वारा पर्याप्त नही माना जाता है बल्कि हमें आत्महत्या के व्यापक प्रेरणार्थक लक्षण प्रदान करता है । ऐसा अनुमान है कि जो आत्महत्या करते हैं, उनमें लगभग एक-तिहाई लोगों को मानसिक बीमारी से ग्रस्त पाया गया है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसे लोग जो मानसिक रोगों के

कारण आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं, को मनोवैज्ञानिक उपचार न कि कारागारों में परिरुद्ध किए जाने की अपेक्षा है जहां उनकी स्थिति और बदतर हो जाती है, जिससे और मानसिक पागलपन चढ़ जाता है । दूसरी ओर, ऐसे लोग जो घोर शारीरिक बीमारी, असाध्य रोग, यातना या बुढ़ापा या असमर्थता द्वारा जीर्ण शारीरिक स्थिति के कारण आत्महत्या का प्रयास करते हैं, को उन्हें पुनः प्रयास करने से रोकने के लिए उपचार गृह की आवश्यकता है न कि कारावास की ।

2.5.1 पी. रत्नम् बनाम भारत संघ[8] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने भी अभिनिर्धारित किया कि भा. दं. सं. की धारा 309 अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करती है क्योंकि यह कहा जा सकता है कि प्राण का अधिकार जिसके बारे में उक्त अनुच्छेद कहता है, के अंतर्गत बलात् जीवन न जीने का अधिकार भी समाहित है । हार्बर्ड विश्वविद्यालय के विधि और मनौविज्ञान के प्रोफेसर, एलन ए. स्टोन के प्राख्यान से उद्धृत करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि मरने का अधिकार निश्चित ही आत्महत्या करने के अधिकार की ओर ले जाता है । तथापि, उच्चतम न्यायालय मुंबई उच्च न्यायालय के मत से असहमत था कि धारा 309 अनुच्छेद 14 का भी अतिक्रमणकारी है । आत्महत्या की स्पष्ट परिभाषा की कमी विषयक तर्क पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इस मतभेद पर विचार किए बिना कि आत्महत्या किन-किन तत्वों से गठित होता है, आत्महत्या की व्यापक परिभाषा दी जा सकती है और यह कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि आत्महत्या साशय अपना जीवन समाप्त करना है जैसाकि इनसाइक्लोपीडिया आफ क्राइम एंड

---

[8] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1844.

जस्टिस, के खंड 4, 1983 संस्करण के पृष्ठ 1521 पर कहा गया है । इस कारण कि धारा 309 आत्महत्या करने के सभी प्रयत्नों को ऐसी परिस्थिति, जिसमें प्रयत्न किए गए, को ध्यान दिए बिना एक ही तरह मानती है, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह ही उक्त धारा को अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी नहीं बना सकती चूंकि समुचित दंडादेश देने में प्रकृति, गुरुता और प्रयत्न के विस्तार पर ध्यान दिया जना चाहिए ; कतिपय मामलों में, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम पर भी बल दिया जा सकता है, जिसकी धारा 12 न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए समर्थ बनाती है कि ऐसे व्यक्ति पर कोई कलंक या निरर्हता नहीं लगा है ।

2.5.2 उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आत्महत्या, साशय अपना जीवन लेना संभवतः प्रागैतिहासिक काल से मानव बर्ताव का भाग रहा है । अर्थव्यवस्था, धर्म और सामाजिक आर्थिक प्रास्थिति जैसे विभिन्न सामाजिक ताकतें आत्महत्या के लिए उत्तरदायी हैं । आत्महत्या के विभिन्न सिद्धांत अर्थात्, सामाजिक, मनौवैज्ञानिक, जीव-रसायन और पर्यावरणीय सिद्धांत हैं । आत्महत्या मूलवंश, धर्म, जाति, आयु या लिंग का कोई अवरोध नहीं जानता । आत्महत्या का पंथ निरपेक्षीकरण हो गया है ।

2.5.3 उच्चतम न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि आत्महत्या एक मनौवैज्ञानिक समस्या है न कि आपराधिक प्रवृत्ति का प्रकटन । आत्महत्या की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक के मधुर शब्द और बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह की आवश्यकता है न कि बेरहम अभियोजक द्वारा किए गए कठोर बर्ताव के अनुकरण में जेलर द्वारा पाषाणहृदय व्यवहार की । यह परम संदेह का विषय है कि क्या ऐसा व्यक्ति जिसने आत्महत्या करने का

प्रयत्न किया है, को विचारण के लिए दर्ज कर, आत्महत्याकर्ताओं की परवाह की जा सकती है ।

2.5.4 उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपनी दंड विधियों को मानवीय बनाने के लिए दण्ड संहिता की धारा 309 कानूनी पुस्तक से हटाए जाने योग्य है । यह एक क्रूर और अतार्किक उपबंध है । इसका परिणाम, ऐसे व्यक्ति को जिसने यंत्रणा झेली है और आत्महत्या करने में असफलता के कारण उसे बदनामी झेलनी पड़ी है, पुनः (दोबारा) दंड देने के तुल्य है । आत्महत्या कार्य को धर्म, नैतिकता या लोकनीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता और प्रयतित आत्महत्या के कार्य का समाज पर कोई हानिकारक प्रभाव नही पड़ता है । आगे, आत्महत्या या इसे करने का प्रयास दूसरों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता इसलिए राज्य को संबंधित व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

2.5.5 उच्चतम न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि हमारे द्वारा व्यक्त किया गया मत न केवल मानवतावादी है बल्कि यह विश्वव्यापी उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा, जो आज की आवश्यकता है, क्योंकि धारा 309 के विलोपन से हम अपनी दांडिक विधि के इस भाग को विश्वव्याप्त विधि के अनुकूल कर सकेंगे ।

2.6 ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य[9] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित करते हुए मारुति श्रीपद दुब्बल और पी. रत्नम वाल मामलों के विनिश्चयों को उलट दिया कि अनुच्छेद 21 का अर्थान्वयन "मरने के अधिकार" को इसमें प्रत्याभूत मूल अधिकार के भाग

---

[9] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 946.

के रूप में शामिल किया गया नहीं किया जा सकता, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि भा.दं..स. की धारा 309 अनुच्छेद 21 का अतिक्रमणकारी है । यह मत व्यक्त किया गया कि जब कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो उसे कतिपय सकारात्मक प्रकट कार्य करने होते हैं और उन कार्यों की उत्पत्ति का पता नहीं लगाया जा सकता या अनुच्छेद 21 के अधीन "प्राण के अधिकार" को संरक्षण के भीतर शामिल नहीं किया जा सकता। " प्राण का अधिकार" अनुच्छेद 21 में समाविष्ट एक प्राकृतिक अधिकार है लेकिन आत्महत्या प्राण की अप्राकृतिक समाप्ति या निर्वापन है अतः "प्राण के अधिकार" की अवधारणा से असंगत और बेमेल है । अन्य अधिकार जैसे वाक् की स्वतंत्रता, आदि के अधिकार से तुलना अप्रासंगिक है । अनुच्छेद 21 के "प्राण" शब्द का अर्थ और भाव निकालने के लिए इसका अर्थान्वयन मानवीय गरिमायुक्त प्राण के रूप में किया गया है । जीवन का कोई ऐसा पहलू जो जीवन को गरिमायुक्त बनाता है, को इसके साथ पढ़ा जाना चाहिए लेकिन उसे नहीं जो इसे निर्वापित करता है अतः जीवन के सतत् अस्तित्व से असंगत है जिसका परिणाम स्वयं अधिकार का विलोप करना है । "मरने का अधिकार" यदि कोई है, स्वभावतः "जीवन के अधिकार" से असंगत है, जैसा जीवन के साथ मृत्यु है ।

2.7 यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उच्चतम न्यायालय ने ज्ञान कौर वाले मामले में भा. दं. स. की धारा 309 की संवैधानिकता पर ध्यान केन्द्रित किया । न्यायालय ने कानून में उक्त उपबंध को प्रतिधारित करने या बनाए रखने की तार्किकता पर विचार नहीं किया ।

2.8 सी. ए. थामस मास्टर बनाम भारत संघ[10] वाले मामले का भी उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा जिसमें अभियुक्त, 80 वर्ष का सेवानिवृत्त अध्यापक सफल, संतुष्ट और प्रसन्न जीवन जीने के पश्चात् स्वेच्छया अपना जीवन समाप्त करना चाहता था । उसने कहा कि उसके जीवन का उद्देश्य समाप्त हो गया है और यह तर्क किया कि उसके जीवन की स्वैच्छिक समाप्ति आत्महत्या करने के समतुल्य नहीं था । केरल उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सामान्यतः समझे जाने वाले आत्महत्या और स्वेच्छया अपना जीवन समाप्त करने के अधिकार के बीच कोई विभेद नहीं किया जा सकता है । चाहे जिस भी कारण से अपने जीवन की स्वैच्छिक समाप्ति भ. दं. सं. की धारा 306 और 309 के अर्थान्तगत आत्महत्या के बराबर होगी । ऐसा व्यक्ति जो हताश है या जीवन से हार गया है, द्वारा की गई आत्महत्या और याची जैसे व्यक्ति द्वारा की गई आत्महत्या के बीच कोई विभेद नहीं किया जा सकता है। यह प्रश्न कि क्या आत्महत्या आवेग में किया गया था या क्या यह लम्बी समझबूझ के पश्चात् किया गया था, पूर्णतः असंगत है ।

3. भारत के विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें

3.1 विधि आयोग ने सामान्य उपयोग और महत्व के केन्द्रीय अधिनियमों का पुनरीक्षण करने के अपने कार्य के भाग रूप में भारतीय दंड संहिता का पुनरीक्षण आरंभ किया । जून 1971 में प्रस्तुत अपनी 42वी रिपोर्ट में आयोग ने अन्य बातों के साथ-साथ धारा 309 के निरसन की सिफारिश की । इस रिपोर्ट के सुसंगत पैराग्राफों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

---

[10] 2000 क्रि. ला. ज. 3729.

16.31 धारा 309 – धर्मशास्त्रों में अत्महत्या – "धारा 309 आत्महत्या करने के प्रयास को दंडित करता है । यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में कुछ परिस्थितियों में आत्महत्या अनुज्ञेय मानी जाती थी । मनु की संहिता के "वन में एकान्तवासी" अध्याय में यह कहा गया है, –

" 31. या उसे चलने दीजिए, पूर्ण निश्चय और सीधे उत्तर-पूर्व दिशा की ओर पानी और हवा पर जीवन चलाते हुए तब तक जाएं जब तक उसका शरीर प्राणहीन न हो जाए ।

3.2. महान संतों द्वारा अपनाए गए उन तरीकों (अर्थात् डूब कर श्वासावरोध ; जल कर या भूख से) में एक द्वारा अपने शरीर से मुक्ति पाने वाला ब्राह्मण दुःख और भय से मुक्त होकर ब्रह्मांड में आनन्दातिरेक करता है ।"

मनु के दो समीक्षकों अर्थात् गोवर्धन और कल्लुक का यह कहना है कि कोई व्यक्ति तब उस महाप्रयाण की यात्रा पर जा सकता है जिसकी समाप्ति मृत्यु पर होती है जब वह असाध्य रोग से ग्रस्त है या भारी विपत्ति (दुर्भाग्य) से ग्रस्त है । शास्त्रों में यह बताया गया है कि यह वैदिक नियमों के प्रतिकूल नहीं है जो आत्महत्या को रोकता है । इस संबंध में मैक्समुलर ने इस प्रकार टिप्पण किया है :–

"तथापि, आपस्तम्ब 2, 23, 2 के समानान्तर से यह स्पष्ट है कि भूख द्वारा स्वैच्छिक मृत्यु एकान्तवासी व्यक्तियों के जीवन का समुचित अंत माना जाता था । इस तथ्य से पद्धति की प्राचीनता और सामान्य प्रचलन का अनुमान निकाला जा सकता है कि जैन तपस्वी भी इसे

विशिष्टतया प्रशंसनीय मानते हैं ।"

16.32 क्या आत्महत्या करने के प्रयत्न को दंडनीय बनाया जाए?

आत्महत्या करने के प्रयत्न के अपराध पर विचार करते हुए एक अंग्रेजी लेखक द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है :—

> "ऐसे व्यष्टि के मामले में, जो पहले ही अपने जीवन को असहनीय समझता है और उसकी खुशी के क्षण बहुत कम हैं और वह अपना जीवन समाप्त करने में होने वाले दुख और मृत्यु को सहने की इच्छा रखता है, उसे अधिक कष्ट पहुंचाना एक अति विकृत प्रक्रिया लगती है । उन लोगों के लिए जिनको जीवन कुल मिलाकर कष्टकर है, और अधिक कष्टकारी और अप्रतिष्ठित बनाने वाला विधान प्रतिकूल विधान लगता है । "

इस मत पर कार्रवाई करते हुए कि ऐसे व्यक्ति समाज की सक्रिय सहानुभूति के योग्य है न कि निन्दा या दंड के, ब्रिटिश संसद ने 1961 में आत्महत्या अधिनियम अधिनियमित किया जिसके द्वारा आत्महत्या करने का प्रयास अपराध नहीं रह गया ।

16.33 धारा 309 को निरसित किया जाए : हमने अपनी प्रश्नावली में यह प्रश्न शामिल किया है क्या आत्महत्या करने के प्रयत्न को कतई दंडनीय बनाया जाए । कमोवेश राय समान रूप से विभाजित थी । तथापि, हमारा यह निश्चित मत है कि दंड उपबंध कठोर और अन्यायोचित हैं अतः इसे निरसित किया जाए ।"

3.2.1 तारीख 11.12.1972 को राज्य सभा में पुरःस्थापित भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1972 के खंड 126 में धारा 309 के लोप का उपबंध था । विधेयक से संलग्न "खंडों का टिप्पण" में यह कहा गया था कि उक्त दंड उपबंध कठोर और अन्यायोचित हैं और यह कि आत्महत्या करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति दंड के बजाय सहानुभूति का पात्र है ।

3.2.2 तारीख 23.11.1978 को राज्य सभा द्वारा यथा पारित भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1978 के खंड 131 द्वारा तत्स्थानी रूप से उपरोक्त परिवर्तन किया गया ।

3.2.3 क्योंकि लोक सभा का 1979 में विघटन हो गया इसलिए राज्य सभा द्वारा पारित विधेयक व्यपगत हो गया ।

3.3 1995 में भारत सरकार द्वारा किए गए निर्देश के अनुसरण में विधि आयोग में परिवर्तित सामाजिक-विधिक परिदृश्य के आलोक में भारतीय दंड संहिता (संशोधन) विधेयक, 1978 के विशेष निर्देश से भारतीय दंड संहिता के व्यापक पुनरीक्षण का कार्य अपने हाथ में लिया । ज्ञान कौर वाले मामले में निर्णय के पश्चात् अगस्त, 1997 में प्रस्तुत विधि आयोग की 156वीं रिपोट ने भा. दं. सं. की धारा 309 के प्रतिधारण की सिफारिश की । उक्त रिपोर्ट के अध्याय 8 को यहां दोहराया जा रहा है :–

अध्याय – 8

आत्महत्या : दुष्प्रेरण और प्रयास

धारा 306 : आत्महत्या का दुष्प्रेरण

भारतीय दंड संहिता की धारा 306 आत्महत्या के दुष्प्रेरण

को दंडित करता है । यह इस प्रकार है :–

" 306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण – यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करे तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा। "

8.02 श्रीमती ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में धारा 306 की संवैधानिकता की चुनौती दी गई थी । धारा 306 की संवैधनिकता को कायम रखते हुए, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 306 एक सुभिन्न अपराध है जो धारा 309 से स्वतंत्र अस्तित्व के योग्य है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

" धारा 306 "आत्महत्या के दुष्प्रेरण" के लिए दंड विहित करती है जबकि धारा 309 "आत्महत्या करने के प्रयत्न" को दंडित करती है । आत्महत्या करने के प्रयत्न का दुष्प्रेरण धारा 306 की परिधि के बाहर है और यह केवल भा. दं. सं. की धारा 107 के साथ पठित धारा 309 के अधीन ही दंडनीय है । कतिपय अन्य क्षेत्राधिकारिताओं में, यद्यपि आत्महत्या करने का प्रयत्न एक दंड अपराध नहीं है फिर भी दुष्प्रेरक को दंडनीय बनाया गया है । उस उपबंध में आत्महत्या के दुष्प्रेरण और आत्महत्या करने के प्रयत्न के दुष्प्रेरण के दंड की व्यवस्था है । इस प्रकार, जहां आत्महत्या करने के प्रयत्न के लिए दंड वांछनीय नही माना जाता है, वहीं इसके दुष्प्रेरण को दंड अपराध बनाया गया है । दूसरे शब्दों में, सहायतायुक्त

आत्महत्या और सहायतायुक्त आत्म हत्या करने के प्रयत्न को समाज के हित के लिए अकाट्य कारणें से दंडनीय बनाया गया है । ऐसे दंड उपबंध की अनुपस्थिति में आसन्न खतरे को रोकने के लिए भी ऐसे उपबंध को वांछनीय माना गया है ।

8.03 इंग्लैंड और वेल्स में, आत्महत्या अधिनियम, 1961 ने विधि के नियम को निराकृत किया जिसके द्वारा यह आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के लिए अपराध है (धारा 1) । अधिनियम की धारा 2(1) दूसरों की आत्महत्या में सदोषिता के लिए आपराधिक दायित्व लगाती है । यह इस प्रकार है :–

> " 2(1) कोई व्यक्ति जो दूसरे की आत्महत्या या दूसरे द्वारा आत्महत्या करने के प्रयत्न में सहायता करता है, दुष्प्रेरण करता है, सलाह देता है या उपाप्त करता है, अभ्यारोपण पर दोषसिद्धि पर चौदह वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास से दंडनीय होगा ।"

2. धारा 309 – आत्महत्या करने का प्रयत्न

8.04 भा. दं. सं. की धारा 309 आत्महत्या करने के प्रयत्न को सादा कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडित करती है ।

8.05 विधि आयोग ने अपनी 42वीं रिपोर्ट में यह परीक्षा की थी कि क्या आत्महत्या करने के प्रयत्न को दंड अपराध के रूप में प्रतिधारित किया जाए । आयोग धर्मशास्त्रों को निर्दिष्ट किया जो कतिपय परिस्थितियों में अपना जीवन समाप्त करने की पद्धति को विधिसम्मत ठहराता था और ब्रिटेन के आत्महत्या अधिनियम, 1961 के उपबंधों को भी निर्दिष्ट किया

जो आत्महत्या करने करने के प्रयत्न के अपराध का गैर-अपराधीकरण किया । इन मतों की परीक्षा करने के पश्चात् आयोग ने सिफारिश की कि धारा 309 कठोर और अन्यायोचित है और इसे निरसित किया जाए ।

8.06 विधि आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में विधेयक का खंड 131 भा. दं. सं. की धारा 309 का लोप करता है ।

8.07 तत्पश्चात्, महत्वपूर्ण न्यायिक परिवर्तन हुए । राज्य बनाम संजय कुमार भाटिया वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ की ओर से तत्कालीन न्यायमूर्ति सच्चर ने यह मत व्यक्त किया कि धारा 309 का जारी रहना एक कालदोष है और इसे सांविधिनिक पुस्तक में नहीं रहने दिया जाना चाहिए । तथापि, इसकी संवैधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर उस मामले में विचार नहीं किया गया था ।

8.08 इसके ठीक पश्चात् मारुति श्रीपद दुब्बल बनाम महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय की ओर से तत्कालीन न्यायमूर्ति सावन्त ने धारा 309 की संवैधानिक विधिमान्यता की परीक्षा की और यह अभिनिर्धारित किया कि धारा संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का अतिक्रमणकारी है । धारा को विभेदकारी प्रकृति का और अनुच्छेद 14 द्वारा प्रत्याभूत समता का अतिक्रमणकारी और अतिलंघनकारी भी अधिनिर्धारित किया गया । अनुच्छेद 21 का निर्वचन मरने या अपना जीवन लेने के अधिकार को शामिल करते हुए किया गया । परिणामतः इसे अनुच्छेद 21 का अतिक्रमणकारी अभिनिर्धारित किया गया ।

8.09 आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने भी चेन्ना जगदीश्वर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य वाले मामले में धारा 309 की संवैधानिक विधिमान्यता पर

विचार किया । खंड न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति अमरेश्वरी ने तर्क को अस्वीकार किया कि अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मरने का अधिकार आता है । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि न्यायालयों के पास यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त शक्ति है कि "कि ऐसे लोगों को जिन्हें देखभाल और सावधानी की आवश्यकता है, के प्रति अप्रत्याशित कर्कश और प्रतिकूल बर्ताव न किया जाए ।" न्यायालय ने अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण को भी अस्वीकार किया ।

8.10 उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 14 और 21 के प्रति निर्देश से पी. रत्नम बनाम भारत संघ वाले मामले में संविधान 309 की संवैधानिक विधिमान्यता की परीक्षा की । न्यायालय ने दिल्ली, बम्बई और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों पर विचार किया और अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण के प्रश्न पर आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से असहमति व्यक्त की । बम्बई उच्च न्यायालय के मतों से असहमत रहते हुए, उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> " जैसा ऊपर अभिनिर्धारित है और उल्लेख किया गया है, के आधार पर, हमारा यह कहना है कि दंड संहिता की धारा 309 को हमारी दंड विधियों को मानवतावादी बनाने के लिए कानूनी पुस्तक से विलोपित किया जाना चाहिए । यह एक क्रूर और अविवेकी उपबंध है और इसका परिणाम ऐसे व्यक्ति को जिसने यंत्रणा झेली है और आत्महत्या में असफलता के कारण उसे बदनामी झेलनी पड़ी है, पुनः (दोबारा) दंड देने के तुल्य है । तब आत्महत्या के कार्य को धर्म, नैतिकता या लोकनीति के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है और

प्रयतित आत्महत्या का समाज पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है । आगे, आत्महत्या या इसे करने का प्रयास दूसरों को नुकसान नहीं पंहुचाता जिसके कारण संबद्ध व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में राज्य को हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 309 अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करती है, इसलिए यह शून्य है । यह कहा जा सकता है कि हमारे द्वारा व्यक्त किया गया मत न केवल समानतावादी है, बल्कि यह विश्वव्यापी उद्देश्य को आगे बढ़ाएगा, जो आज की आवश्यकता है, क्योंकि धारा 309 के विलोपन से हम अपनी दांडिक विधि के इस भाग को विश्व व्याप्त विधि के अनुकूल कर सकेंगे ।"

8.11 लेकिन उच्चतम न्यायालय के इस मत को श्रीमती ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति वर्मा (तत्कालीन) द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पी. रत्नम वाला मामला गलत विनिश्चित किया गया है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

" जब कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो उसे कतिपय सकारात्मक प्रकट कार्य करने पड़ते हैं और अनुच्छेद 21 के अधीन "प्राण के अधिकार" के संरक्षण के भीतर उन कार्यों की उत्पत्ति का पता नहीं लगाया जा सकता या शामिल नहीं किया जा सकता है । "प्राण की पवित्रता " के इस महत्वपूर्ण पहलू की भी अनदेखी नहीं की जा सकती । अनुच्छेद 21 प्राण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण की गारंटी देने वाला उपबंध है और कल्पना मात्र भी "प्राण

के निर्वापन" को "प्राण के संरक्षण" के अंतर्गत नहीं पढ़ा जा सकता । चाहे जो हो, आत्महत्या कर अपना जीवन समाप्त करने के लिए व्यक्ति को अनुज्ञा देने के चिन्तन के संबंध में, हम अनुच्छेद 21 का अर्थान्वयन इसमें प्रत्याभूत मूल अधिकार के भाग के रूप में 'मरने के अधिकार' को शामिल करते हुए नहीं निकाल सकते । प्राण का अधिकार अनुच्छेद 21 में समाविष्ट एक प्राकृतिक अधिकार है लेकिन आत्महत्या प्राण का अप्राकृतिक या निर्वापन है अतः, "प्राण के अधिकार" की अवधारणा से असंगत और बेमेल है । ससम्मान और पूर्ण नम्रता से, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि "प्राण के अधिकार" के अंतर्गत 'मरने का अधिकार' शामिल है, वाक् की स्वतंत्रता, आदि, जैसे अधिकारों की तरह तुलनात्मक आधार पर अन्य अधिकारों की प्रकृति की समरूपता नहीं पाते । ससम्मान, अनुच्छेद 21 के संदर्भ में उपदर्शित कारण से तुलना अप्रासंगिक है । अन्य मूल अधिकारों से संबंधित विनिश्चय जिसमें अधिकार के प्रयोग की बाध्यता के अभाव को उस अधिकार के प्रयोग के भीतर शामिल किया गया, वह अनुच्छेद 21 के संबंध में पी. रत्नम वाले मामले में व्यक्त किए गए मत के समर्थन में उपलब्ध नहीं है ।

अनुच्छेद 21 के "प्राण" शब्द का अर्थ और भाव निकालने के लिए इसका अर्थान्वयन गरिमायुक्त जीवन के रूप में किया गया है । जीवन का ऐसा कोई पहलू जो जीवन को गरिमायुक्त बनाता है, को इसके साथ पढ़ा जाना चाहिए लेकिन उसे नहीं जो इसे निर्वापित करता है, अतः, जीवन के सतत् अस्तित्व से असंगत है जिसका

परिणाम स्वयं अधिकार का विलोप करना है । "मरने का अधिकार" यदि कोई है, स्वभावतः 'जीवन के अधिकार' से असंगत है जैसा 'जीवन के साथ मृत्यु' है। "

8.12 अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के प्रश्न पर न्यायालय पी. रत्नम मामले में न्यायमूर्ति हंसारिया द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत था ।

8.13 न्यायमूर्ति वर्मा ने आगे यह मत व्यक्त किया कि विधि आयोग द्वारा इसके हटाने समेत प्रयतित आत्महत्या को दंडित करने के ऐसे दंड उपबंध को प्रतिधारित करने की वांछनीयता पर तर्क यह उपदर्शित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि उपबंध अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी होने के कारण असंवैधानिक है । यदि उन पहलुओं पर विचार किया जाए तो उपबंध की कठोरता दंड देने के विषय में व्यापक स्वविवेक द्वारा उपशमित हो जाती है चूंकि कोई न्यूनतम दंडादेश देने की कोई अपेक्षा नहीं है और कारावास का दंडादेश भी अनिवार्य नहीं है । दंडादेश के रूप में कोई न्यूनतम जुर्माना भी विहित नहीं है अकेले जिनसे ही भा. दं. सं. की धारा 309 के अधीन दोषसिद्धि पर दंडित किया जा सके । इस पहलू पर यह अभिनिर्धारित करने के लिए पी. रत्नम वाले मामले में ध्यान दिया गया कि अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं किया गया है ।

8.14 **श्रीमती ज्ञान कौर** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय ने स्पष्ट रूप से इस बात की पुष्टि की कि अनुच्छेद 21 में प्राण के अधिकार के अंतर्गत मरने का अधिकार नहीं आता है । परिणामतः धारा 309 जो आत्महत्या करने के प्रयत्न को दंडित करती है, असंवैधानिक नहीं है ।

8.15 एक ऐसी विचारधारा है जो आत्महत्या करने के प्रयत्न के अपराध के गैर-आपराधीकरण की वकालत करती है । वे उन लोगों के लिए अनुकम्पा और सहानुभूतिपूर्वक बर्ताव की वकालत करते हैं जो अपना जीवन समाप्त करने के अपने प्रयत्न में असफल हो जाते हैं । वे तर्क करते हैं कि धारा 309 का विलोपन आत्महत्या करने के प्रयत्न का आमंत्रण या प्रोत्साहन नहीं है । व्यक्ति विभिन्न कारणों से आत्महत्या करने के प्रयत्न करने के कार्य में फंस जाता है जिसमें से कुछ कभी-कभी उसके नियंत्रण से परे होते हैं ।

8.16 दूसरी ओर, कतिपय परिवर्तन जैसे मादक द्रव्य औषधि व्यापार अपराध, देश के विभिन्न भागों में आतंकवाद मानव बम की प्रवृत्ति आदि ने आत्महत्या करने के प्रयास को अपराध बनाए रखने की आवश्यकता पर फिर से सोचने को मजबूर कर दिया है । उदाहरणार्थ, आतंकवादी या स्वापक औषधि व्यापारी जो साइनाइड की गोली खाने के अपने प्रयास में असफल रहता/रहती है और मानव बम जो हमले अपने लक्ष्य में स्वयं को मारने के प्रयास में असफल रहता/रहती है, पर धारा 309 के अधीन आरोप लगाया जाना चाहिए और अपराध साबित करने के लिए अन्वेषण किए जाते हैं । धारा 309 के अधीन अपराधियों के ये समूह उन प्रवर्गों से भिन्न प्रवर्ग के अधीन आते हैं जो मनोवैज्ञानिक और धार्मिक कारणों से आत्महत्या करने का प्रयास करते हैं ।

8.17 तद्नुसार, हम सिफारिश करते हैं कि धारा 309 को भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध बना रहने दिया जाए और विधेयक के खंड 131 को हटाया जाए ।"

3.4 उच्च्तम न्यायालय ने यह कायम रखा कि उपबंधों की संवैधानिक विधिमान्यता को न्यायनिर्णीत करने के लिए सुसंगत सिद्धांतों को लागू कर ही भा.दं.सं. की धारा 309 की संवैधानिक विधिमान्यता तय की जाए । न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता में इसे बनाए रख्ने की वांछनीयता पर विचार नहीं किया ।

4. अन्य विचार

4.1 श्री न्यायमूर्ति जहांगीरदार ने "आत्महत्या का प्रयास – अपराध या पुकार" शीर्षक वाले अपने लेख में अपना मत निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया :–

> " व्यक्ति विभिन्न कारणों और विभिन्न परिस्थितियों में आत्महत्या करता है । सभी मामलों में, लक्ष्य कई वास्तविकताओं या कल्पनात्मक विपत्ति जिसका वह व्यक्ति शिकार है, से मुक्ति पाना होता है । यदि वह अपने प्रयास में सफल होता है तो इसे मुक्ति माना जाता है ; यह असफल होता है तो इसे अपराध माना जाता है । जीवित रह जाना अपराध है । ऐसे व्यक्ति को दंडित करने के लिए कोई तार्किक औचित्य निकालना असंभव है जिसने उस दंड से बचने के लिए प्रयास किया जिसे वह सोचता है कि समाज उस पर लगाएगा । क्या जीवित बच जाना पर्याप्त दंड नहीं है?.....काफी समय से, भाग्यवश आत्महत्या और प्रयतित आत्महत्या के बर्ताव में परिवर्तन आया है और सर्वाधिक सभ्य देशों ने प्रयतित आत्महत्या के अपराध के रूप में अवधारणा को समाप्त कर दिया है । गोथे ने कहा कि आत्महत्या मानव जीवन की एक दुर्घटना है जो यद्यपि काफी

विवादित और विमर्शित है, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति से सहानुभूति की आवश्यकता है और प्रत्येक युग में नए सिरे से देखना चाहिए । कई देशें ने मान्यता प्रदान की है कि प्रयतित आत्महत्या उपचार का विषय है न कि दंड का । 1789 में फ्रांस क्रान्ति के पश्चात् प्रयतित आत्महत्या को फ्रांस में और बाद में सभी यूरोपीय देशों में, अपराध के रूप में समाप्त किया गया । इंग्लैंड, यथा प्रायिकतः, सुधार में फिसड्डी था लेकिन सौभाग्यवश 1961 में आत्महत्या अधिनियम द्वारा, प्रयतित आत्महत्या के 'अपराध' को समाप्त किया गया। यू. एस. एस. आर. और यू. एस. के अधिकांश राज्यों में यह अपराध नहीं है । यह स्वीकार किया गया कि आत्महत्या तार्किक निवारकों से अप्रभावित मनोवैज्ञानिक घबराहटों का परिणाम है । इंग्लैंड में समैरिटान नामक समाज उन अनुध्यात आत्महत्या को मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध कराता है..... अधिकांश मामले मनोविकृति संबंधी हैं..... दंड संहिता की धारा 309 की विद्यमानता न केवल अतार्किक और घृणित है बल्कि समाज के ऐसे सदस्यों के लिए नुकसानदेह है जिसके लिए इसे कानूनी पुस्तक में लाया गया है । कानूनी पुस्तक में विद्यमान इस उपबंध के परिणामस्वरूप, मानसिक उपचार चाहने वाले लोग सहज आत्महत्या करने के लिए उद्यत हैं, दंडित होने के भय से इसे चाहने से निवारित किए जाते हैं.....जो दण्ड का सिद्धांत है जो भा.द.स. की धारा 309 को सूचित करता है? यह निवारक नहीं हो सकता है क्योंकि व्यक्ति अपने नियंत्रण से परे कारणों से कार्य करता है ; यह सुधारात्मक नहीं हो सकता है क्योंकि एक बीमार व्यक्ति महापराधियों के बीच में झोंक दिया जाता है । दण्डात्मक सिद्धांत

पूर्णतः असंगत है क्योंकि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति अन्य के प्रति दोषपूर्ण कार्य नहीं करता । संक्षेप में, आत्महत्या करने के प्रयास को अपराध नहीं माना जा सकता और न ही माना चाहिए । यह ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाता जो दूसरों को दुख पहुंचाना चाहता हो ; इसका अवलंब किसी व्यक्ति द्वारा आपराधिक आशय से नहीं लिया जाता । आत्महत्या और प्रयतित आत्महत्या को परिभाषित करना कठिन है । ऐसा कार्य जिसे ठीक तरह से परिभाषित नहीं किया जा सकता को दंडित नहीं किया जा सकता है । आत्महत्या का प्रयास लोगों द्वारा अपने नियंत्रण से परे कारणों से किया जाता है । उन्हें, सहानुभूति, देखभाल, प्रेम और उपचार की आवश्यकता है । ऐसे लोगों को "अपराधी" घेषित करने के पश्चात् इनका उपचार कठिन हो जाता है । प्रयतित आत्महत्या के लिए दंड का समर्थन दंड के किसी मान्यताप्राप्त सिद्धांत से नहीं है। .....धारा 309 को "समाप्त करने की इच्छा रखने वाले" केवल उन अभागे, असहाय लोगों के साथ उचित बर्ताव की मांग कर रहे हैं जो आत्महत्या करने के अपने प्रयासों में असफल हो जाते हैं । धारा 309 का हटाया जाना आत्महत्या करने के प्रयास का आमंत्रण या प्रोत्साहन नहीं है.....असहायों को दंडित न करें ; असहाय की सहायता करें ।"

4.2 विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आत्महत्या के निवारण के लिए, एक गैर-सरकारी संगठन स्नेह, आत्महत्या निवारण केन्द्र के प्रयासों को जानने पर उनसे कहा कि दंडनीय अपराध के रूप में विधि द्वारा विनिर्दिष्ट आत्महत्यापरक बर्तावों का सार्वजनिक स्वास्थ्य स्तर पर कई नकारात्मक प्रभाव है । इसके अतिरिक्त, मानसिक बीमारी या सामाजिक कठनाई के

परिणामस्वरूप बर्ताव को कारावास से दंडित से जनता में बिलकुल गलत संदेश जाता है । समरूप पुराने विधान को निरसित करने वाले देशों से अब समग्र सुधार के संकेत मिल रहे हैं ।

4.3 अंतरराष्ट्रीय आत्महत्या निवारण संगम, फ्रांस के अध्यक्ष ने माननीय विधि और न्याय मंत्री, भारत सरकार को संबोधित तारीख 9 अक्तूबर, 2007 के अपने पत्र द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रयतित आत्महत्या को दंडनीय अपराध की प्रास्थिति समाप्त करने का समर्थन किया । उन्होंने कहा कि विश्व के अधिकांश देशों में जहां प्रयतित आत्महत्या को दंडित करने वाली विधियां थीं और जिन्होंने बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में उन विधियों को इस विश्वास द्वारा वापस लिए जाने को न्यायोचित ठहराते हुए वापस ले लिया कि आत्महत्या का प्रयास करना अपराध नहीं है कि इसे दंडित किया जाए बल्कि ऐसे लोगों द्वारा कठिन जीवन स्थिति में निराशाजनक प्रतिक्रिया करना जो प्रायः मानसिक विकास रोग से ग्रस्त हैं । इन परिवर्तनों से जागरुकता परिलक्षित हुई कि आत्महत्या करने वाले लोगों को सहायता की आवश्यकता है और कारावास उनकी समस्या को और बदतर ही बनाता है । जब यूरोप और उत्तरी अमेरिका के सभी देशों ने प्रयतित आत्महत्या का गैर-अपराधीकरण किया तो यह एक आशंका जताई गई कि आत्महत्या की दर बढ़ सकती है । किसी प्रकार का कोई संकेत नहीं है कि गैर-अपराधीकरण के पश्चात् आत्महत्याओं में वृद्धि हुई और कई दृष्टांतों में यह पाया गया कि आत्महत्याओं में कमी आयी चूंकि अधिकांश आत्महत्याकर्ताओं को वह सहायता मिली जिनकी उन्हें आवश्यकता थी । सिंगापुर जैसे देश में जहां कुछ आत्महत्या प्रयासकर्त्ताओं को अब भी कारागार में रखा गया है, ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन प्रक्रियाओं से कोई

फायदा हो रहा हो । उदाहरणर्थ, सिंगापुर में आत्महत्या को दंडनीय अपराध बनाए रखने के बावजूद हाल ही के वर्षों में आत्महत्या की दरों में वृद्धि हो रही है । अन्तरराष्ट्रीय आत्महत्या निवारण संगम यह चाहता है कि भारत विश्व के उन देशों में शामिल हो जिन देशों ने उन व्यक्तिगत आत्महत्याकर्त्ताओं के स्पष्टतः संसूचित करने के लिए प्रयतित आत्महत्या का गैर-अपराधीकरण किया कि वे कारावास के भय से अपनी समस्याओं से निपटने से बचने के बजाय सहायता की मांग कर सकें ।

4.4 **स्नेह,** चेन्नई की यह राय है कि भा.दं.सं. की धारा 309 जैसी भारतीय प्राचीन विधि का बना रहना आत्महत्या निवारण के कारणों को दूर करने का विरोधी साबित हो रहा है । पड़ोसी श्रीलंका समेत संपूर्ण यूरोप, उत्तरी अमेरिका, अधिकांश दक्षिण अमेरिका और एशिया जैसे कई देशों में प्रयतित आत्महत्या अब दंडात्मक अपराध नहीं है । कई लोग जो आत्महत्या करने का अवलम्ब लेते हैं और जो बच जाते हैं, गिरफ्तार होने या दंडित किए जाने के भय से चिकित्सा सहायता की मांग नहीं करते । आत्महत्या "सहायता की पुकार" है । ऐसे लोग जो आत्महत्या का प्रयास करते हैं, को व्यापक और कभी-कभी दीर्घ अवधि मनोवैज्ञानिक-सामाजिक सहयोग की आवश्यकता है । निश्चित ही उनके लिए कारावास सर्व रोगहर नहीं हो सकता है । उन्हें अनुकम्पा, भावनात्मक सहयोग और कभी-कभी मनोवैज्ञानिक सहायता की भी आवश्यकता है । यदि प्रयतित आत्महत्या के कार्य को गैर-अपराधीकृत किया जाए तो यह सभी लोगों के लिए भारत में आत्महत्या कम करने में अपनी सहायता और समर्थन करने में बातों को अधिक व्यवहार्य आसान बनाएगा । यह उन लोगों को प्रोत्साहित करेगा जो भय या अवरोध के बिना तत्काल चिकित्सीय और व्यावसायिक सहायता

चाहने के लिए आत्महत्या करने का प्रयास किया । पाकिस्तान, बंगलादेश, मलेशिया, सिंगापुर और भारत जैसे विश्व के कुछ थोड़े से देश ही इस विधि पर डटे हुए हैं । यह आशंका कि विधि के निरसन से आत्महत्याओं में वृद्धि होगी, इस तथ्य से झूठ साबित होती है कि श्रीलंका ने चार वर्ष पहले विधि निरसित की थी और आत्महत्या दर में कमी दिखाई पड़ रही है । स्नेह की राय में, इस विधि की निरन्तरता से निम्नलिखित कठिनाईयां होती हैं :–

1. वे लोग जो आत्महत्या का प्रयास करते हैं, के लिए आपात उपचार तत्काल सुलभ नही है क्योंकि वे स्थानीय अस्पतालों और चिकित्सकों द्वारा तीसरे केन्द्रों को भेजे जाते हैं क्योंकि इसे चिकित्सा-विधिक मामला कहा जाता है । सुनहरे पल में बिताया गया समय कई प्राणियों को बचाएगा ।

2. वे लोग जो आत्महत्या का प्रयास करते हैं, पहले से ही दुखी और मनोवैज्ञानिक पीड़ा से ग्रस्त हैं और उनके लिए पुलिस पूछताछ की बदनामी का सामना करना और दुख, शर्म तथा दोष को बढ़ाने और आगे अत्महत्या के प्रयास का कारण बनता है ।

3. पुलिस प्रक्रिया से जूझने वाले परिवार के लिए यह परिवार के कष्ट को और बढ़ाता है ।

4. यह प्रयतित आत्महत्या घटिया रिपोर्टिंग को भी बढ़ाता है और समस्या की महत्ता अज्ञात नहीं है । जब तक कोई समस्या के विस्तार की प्रकृति को नहीं जानता प्रभावी हस्तक्षेप संभव नहीं है ।

5. क्योंकि कई प्रयतित आत्महत्याओं को आकस्मिक विष देने, आदि के अधीन वर्गीकृत किया जाता है इसलिए ऐसे लोगों जिन्होंने प्रयास

किए, के लिए भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य सहयोग उपलब्ध नहीं है क्योंकि वे सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ हैं ।

4.5 रतनलाल और धीरज लाल की पुस्तक ला आफ क्राइम (26वां संस्करण, 2007, पृष्ठ 1825-1827) के निम्नलिखित पैराग्राफ को उद्धृत करना लाभकर होगा :

" **जीने का अधिकार : सामान्य** – प्रत्येक सभ्य विधिक प्रणाली जीवन के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है । हमारा संविधान एक लिखित संविधान है । कतिपय ऐसे आधारभूत अधिकार हैं जिन्हें संविधान के निर्माताओं द्वारा मूल अधिकार माना गया है । अनुच्छेद 21 उनमें से एक है । यह घोषित करता है कि किसी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से ही प्राण या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं । भारतीय दंड संहिता की धारा 309 आत्महत्या करने के प्रयत्न को एक वर्ष के कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडनीय अपराध बनाती है । इस प्रकार, जीवन के अधिकार को भी जीने का कर्तव्य माना गया है । इसलिए, सामान्य तौर से, किसी व्यक्ति को अपना जीवन समाप्त करने का कोई अधिकार नहीं है । उसे अपने प्रति और संपूर्ण समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना है ।

जीने का अधिकार : प्रविषय और व्याप्ति – यह स्थिर विधि है कि जीवन का अर्थ " पशुवत अस्तित्व" नहीं है । 100 वर्ष से और पहले मन्न बनाम इलियोनोस[11] के महत्वपूर्ण मामले में यू. एस.

---

[11] (1876) 94 यू. एस. 113.

उच्चतम न्यायालय द्वारा इसे मान्यता प्रदान की गई थी । हमारे उच्चतम न्यायालय ने इस सिद्धांत की मान्यता खड़क सिंह[12], सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[13] और अन्य मामलों में प्रदान की । मेनका गांधी बनाम भारत संघ[14] वाले मामले के पश्चात् विभिन्न अधिकारों को अनुच्छेद 21 के अंतर्गत अभिनिर्धारित किया गया ; जैसे विदेश जाने का अधिकार, एकान्तता का अधिकार, एकान्त परिरोध के विरुद्ध अधिकार, त्वरित विचारण का अधिकार, आश्रय का अधिकार, अप्रदूषित पर्यावरण में सांस लेने का अधिकार, चिकित्सीय सहायता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, आदि । इस प्रकार जीवन का अर्थ मात्र जीना नहीं है बल्कि प्रफुल्ल ओजस्विता – सतत् बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास की क्षमता के साथ संपूर्णता की संभावना है

मरने का अधिकार? – सामान्य नियम के अनुसार, प्रत्येक मानव प्राणी को जीवित रहने और तब तक जीवन के फलों का उपभोग करते रहना चाहिए जब तक प्रकृति इसे समाप्त करने के लिए हस्तक्षेप नहीं करती । मृत्यु निश्चित है । यह जीवन का एक सत्य है । लेकिन यदि किसी व्यक्ति को अपने जीवन का उपभोग करने का अधिकार है तो उसे वह जीवन अपने नुकसान, कष्ट या अरुचि तक जीने के लिए मजबूर भी नहीं किया जा सकता । यदि कोई व्यक्ति दयनीय जीवन जी रहा है या गंभीर रूप से बीमार है या असाध्य रोग से ग्रस्त है तो उसे कष्टप्रद जीवन जीने और पीड़ा सहने

---

[12] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1295.
[13] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1675.
[14] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 597.

के लिए कहना भी अनुचित और अनैतिक है । यह मानवता का अपमान है । जीने के अधिकार का अर्थ सामान्य मानव प्राणी की तरह शान्तिपूर्वक जीवन जीने के अधिकार से है । कोई भी इस सिद्धांत की प्रशंसा कर सकता है कि व्यक्ति को अपनी सामाजिक बाध्यताओं से बचने की दृष्टि से मरने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । उसे सभी कर्तव्य नागरिकों के प्रति करने चाहिएं । तथापि, वहीं, यदि वह अपने शरीर की सामान्य देखभाल करने में असमर्थ है या सभी संवेदनाएं खो चुका है और उसकी वास्तविक इच्छा संसार छोड़ने की है तो उसे यातना और कष्टपूर्ण जीवन के साथ जीते रहने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता । ऐसे मामलों में, वस्तुतः उसे मरने के लिए अनुज्ञा न देना क्रूरता होगी.....

दुख मांग की कमी – जीने के अधिकार का अर्थ प्राकृतिक जीवन की समाप्ति तक मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार है । इस प्रकार, जीने के अधिकार के अंतर्गत जीवन की समाप्ति पर गरिमा के साथ मरने का अधिकार शामिल है और इसकी तुलना जीवन की प्राकृतिक अवधि को कम कर अप्राकृतिक मृत्यु के कारण मरने के अधिकार से नहीं की जानी चाहिए ।

अतः मर रहे व्यक्ति, जो असाध्य रोग से बीमार है या लगातार निष्क्रिय स्थिति में है, को अपने जीवन के अपरिपक्व समाप्ति द्वारा इसे (जीवन को) समाप्त करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । तथ्यतः, ये जीवन समाप्त करने के मामले नहीं हैं बल्कि प्राकृतिक मृत्यु को तेजी से आगे बढ़ाने की मात्र प्रक्रिया है जो पहले ही प्रारंभ हो गई है । ऐसे मामलों में, मृत्यु कारित करना अपने दुखभोग को

समाप्त करने का परिणाम होगा ।

लेकिन ऐसा परिवर्तन वांछनीय होते हुए भी विधानमंडल का कार्य माना जाता है जो किसी संभाव्य दुरुपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त सुरक्षोपाय का उपबंध करते हुए उपयुक्त विधि अधिनियमित करे ।"

5. सिफारिश

5.1 आत्महत्या सभी युगों में होती रही है । जीवन ईश्वर का वरदान है और अकेले वही इसे ले सकता है । कोई भी समाज अपरिपक्व जीवन की समाप्ति का अनुमोदन नहीं दे सकता । लेकिन जब कोई विपद्ग्रस्त व्यक्ति अपना जीवन समाप्त करने का प्रयास करता है तो मरने की उसकी असफलता पर दंड से उसे दंडित करना क्रूरता और अतार्किकता होगी । यह उसकी घोर विपदा है जो उसे अपना जीवन समाप्त करने का प्रयास करने का कारण बनाती है । आत्महत्या का प्रयास दंड के बजाय उपचार और देखभाल के योग्य उसकी रोगग्रस्त मानसिक दशा का प्रकटीकरण है । ऐसा व्यक्ति जो आत्महत्या करने की अपनी असफलता के कारण पीडा और बदनामी पहले ही झेल चुका है, को अतिरिक्त विधिक दंड से दंडित करना उचित और ऋजु नहीं होगा ।

5.2 आपराधिक विधि को अनुचित अति उत्साह से कार्य नहीं करना चाहिए और उसे तभी मुखरित होना चाहिए जब वह यह साबित कर सके कि आशयित बुराई के उपचार के लिए यह उपयुक्त और प्रभावी तंत्र है ।

5.3 भारतीय दंड संहिता की धारा 309 ऐसे व्यक्ति के लिए दोहरे दंड का उपबंध करती है जो अपने निजी जीवन से पहले ही उब गया है और इसे समाप्त करना चाहता है । धारा 309 आत्महत्याओं के निवारण और

ऐसे लोग, जो आत्महत्या का प्रयास कर चुके हैं, को चिकित्सीय देखभाल की पहुंच में सुधार करने में भी एक अड़ंगा है । ऐसे व्यक्ति को दंडित करना अयुक्तियुक्त है जो पारिवारिक अनबन, विपन्नता, नजदीकी नातेदार की कमी या अन्य इसी तरह के कारणों से आत्म-परिरक्षण के तत्व से पराजित हो जाता है और अपना निजी जीवन समाप्त करने का विनिश्चय करता है । ऐसे मामले में, अभागा व्यक्ति सहानुभूति, सलाह-मशविरा और समुचित उपचार के योग्य है, निश्चित ही कारावास के नहीं ।

5.4 धारा 309 को कानूनी पुस्तक से विलोपित किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि उपबंध अमानवीय है चाहे यह संवैधानिक हो या असंवैधानिक । भारतीय दंड संहिता की धारा 309 में अंतर्विष्ट प्राचीन विधि का निरसन कई जीवन बचाएगा और पीड़ितो को उनके दुखभोग से मुक्त करेगा ।

5.5 आयोग का यह मत है कि आत्महत्या करने का प्रयास करने में दूसरे व्यक्ति की सहायता या प्रोत्साहन को अदंडित नहीं छोड़ा जाना चाहिए, धारा 309 के अधीन आत्महत्या करने के प्रयास के अपराध को भारतीय दंड संहिता से लोप किए जाने की आवश्यकता है ।

5.6 तद्नुसार हम सिफारिश करते हैं ।

ह/-
(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)
अध्यक्ष

ह/-
(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद
सदस्य

ह/-
(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)
सदस्य-सचिव

तारीख :- 17 अक्तूबर, 2008